संकट के बाद मौद्रिक नीति संबंधी विचार: व्यवहारकर्ता का दृष्टिकोण*

सूबीर गोकर्ण

भूमिका

समावेशी विकास हेतु आर्थिक नीति संबंधी इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में बोलने के लिए आमंत्रित करने हेतु मैं वित्त मंत्रालय तथा नैशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैन्स एंड पॉलिसी को धन्यवाद देता हूँ। हम आम तौर पर समावेशी वृद्धि और विकास की प्रक्रिया को उन ढांचागत कारकों और भूमिकाओं के साथ जोड़कर देखते हैं जो वृद्धि को त्वरित करने, श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करने, मानक पूंजी का निर्माण करने, सामाजिक सुरक्षा साधनों तथा जरूरी जन-सेवाओं तक की पहुंच को सुगम बनाने में मदद करती हैं। इससे पहले के कई सत्रों में इन मुद्दों पर प्रत्यक्ष रूप से चर्चा की जा चुकी है। दूसरी ओर, हम आम तौर पर इस प्रकार के दीर्घावधि लक्ष्यों को मौद्रिक नीति के साथ जोड़कर नहीं देखते हैं। तथापि हाल के संकट से प्राप्त कई सबकों में से महत्त्वपूर्ण सबक यह है कि वित्तीय क्षेत्र में हुए असंतुलन से उस प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है जो सुस्थिर, दीर्घावधि वृद्धि को बनाए रखती है और यह प्रक्रिया प्रभावी समावेशन के लिए सबसे जरूरी है। अत्यधिक उतार-चढ़ाव तथा अस्थिरता पैदा करने वाले आघात इन लक्ष्यों के अनुरूप निजी अथवा सार्वजनिक क्षेत्रों को निवेश करने से रोकते हैं। राजकोषीय क्षेत्र में, विशेष रूप से अर्थव्यवस्था को संकट से उबारने की लागत के चलते वृद्धि को बनाए रखने की सरकार की क्षमता में उल्लेखनीय कमी आने के साथ-साथ ऐसे व्यय में भी कमी आ सकती है जिनसे जन-कल्याण में वृद्धि होती है।

इस दृष्टिकोण से, संभावित व्यापक परिभाषा के अनुसार आर्थिक स्थिरता को समावेशी विकास की किसी भी रणनीति हेतु एक आवश्यक तत्त्व के रूप में देखा जा सकता है। इस बात को देखते हुए कि केन्द्रीय बैंक स्थिरता बनाये रखने में अपनी भूमिका अदा कर सकता है, स्थिरता बनाए रखने की चाह के संदर्भ में संकट से प्राप्त सबकों ने इस दिशा में केन्द्रीय बैंक के अधिदेश, रणनीति तथा लिखतों के संबंध में काफी चिंतन तथा बहस की स्थिति पैदा कर दी है। विश्व के केन्द्रीय बैंकर संकट से प्राप्त सबकों के इस निहितार्थ को समझने की कोशिश कर रहे हैं कि उन्हें ऐसा क्या करना चाहिए जो एक दूसरे के प्रयासों से मिलते हों या भिन्न हों, तथा ये उपाय बदले हुए लक्ष्यों की अपेक्षाओं को पूरा करने में कितना सफल होंगे।

विभिन्न केन्द्रीय बैंकों द्वारा हाल में इन मुद्दों पर चिंतन किया गया है और मैं अपने इस भाषण में इनमें से कुछ मुद्दों पर विचार करना चाहूंगा। साथ-ही इसे समष्टि आर्थिक स्थिरता संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए हमारे चिंतन की पृष्ठभूमि के रूप में उपयोग करना चाहूँगा। सबसे पहले मैं एक सरल ढांचे को प्रस्तुत करूँगा जिसे मैं मौद्रिक नीति तथा केन्द्रीय बैंकिंग के संबंध में विचार करते समय उपयोगी पाता हूँ, तथा संकट के बाद जो मुद्दे उभरकर आए हैं उन पर विचार करने के लिए इसका उपयोग करूंगा।

स्थिरता संबंधी ढांचा

टेलर के प्रसिद्ध नियम का मौद्रिक नीति के विश्लेषण के संबंध में पिछले दो दशकों से प्राधान्य रहा है। अपने मानक रूप में यह नियम दर्शाता है कि सर्वोत्कृष्ट अल्पावधि ब्याज दर मुद्रास्फीति के अपने लक्ष्य से विचलन एवं उत्पादन / बेरोजगारी के अंतर दोनों का फलन है। यह मुद्रास्फीति के औपचारिक नियंत्रण तथा अधिक लचीले वृद्धि - मुद्रास्फीति संतुलन (दोनों) को मौद्रिक नीति लक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है। तथापि जब हम विश्व के विभिन्न केन्द्रीय बैंकों द्वारा किए जा रहे कार्यों को देखते हैं तो उससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश देशों में मौद्रिक नीति उनके व्यापक कार्यों में से केवल एक कार्य है। कई मामलों में विवेकपूर्ण विनियमन तथा पर्यवेक्षण भी एक उत्तरदायित्व है, इसलिए वित्तीय स्थिरता का कम-से-कम एक आयाम केन्द्रीय बैंकों के निर्धारित कार्यों में पहले ही शामिल है। कई केन्द्रीय बैंकों ने विनिमय दर तथा विदेशी मुद्रा भंडार के संग्रहण के दोनों लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए सक्रिय हस्तक्षेप के जरिए भुगतान संतुलन का प्रबंधन किया है।

इस पूरे परिदृश्य को देखने के बाद मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता कि केन्द्रीय बैंकों द्वारा आम तौर पर बहुविध लक्ष्यों का अनुसरण किए जाने पर भी इन सभी में एक सामान्य भावना निहित है और वह है स्थिरता की भावना, हालांकि इनमें से कुछ लक्ष्यों का अनुसरण केवल अनौपचारिक तौर पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, ऊपर उल्लेख किये गये सभी आयामों - कीमत, उत्पादन, वित्तीय तथा बाह्य क्षेत्र - के

* वित्त मंत्रालय,भारत सरकार एवं नैशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैन्स एंड पॉलिसी द्वारा नई दिल्ली में आयोजित 'समावेशी विकास हेतु आर्थिक नीति' विषयक सम्मेलन के पूर्ण सत्र में 1 दिसंबर 2010 को डॉ. सूबीर गोकर्ण,उप गवर्नर,भारतीय रिजर्व रौंक द्वारा दिया गया व्याख्यान। मुनीष कपूर द्वारा दिये गये सहयोग एवं फीडबैक के लिए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती है।

साथ-साथ केन्द्रीय बैंक का मुख्य लक्ष्य उन संबंधित आयामों के अनुरूप स्थिरता को बनाये रखना भी है। इससे वह आधारभूमि तैयार होती है जिसे मैं स्थिरता संबंधी ढांचा कहना चाहूंगा। लक्ष्यों के अनुसार इनको स्पष्ट किया जाए तो इनमें केन्द्रीय बैंक के कार्यकलापों के ये चार आयाम शामिल होते हैंः

इनमें से पहले दो घटक वितर्क से परे हैं और ये टेलर नियम के स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं।

1. मूल्य स्थिरताः लक्षित अथवा बेंचमार्क दर से वास्तविक मुद्रास्फीति की दर के विचलन को न्यूनतम रखना।

2. उत्पादन स्थिरताः संभावित आर्थिक कार्यकलापों से वास्तविक आर्थिक कार्यकलापों के विचलन को न्यूनतम रखना।

अगले दो घटकों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना अधिक कठिन कार्य है क्योंकि संदर्भानुसार इनके अलग-अलग मतलब हो सकते हैं । इसके साथ ही, पहले दो घटकों के विपरीत, जिन्हें एकल-लिखत दृष्टिकोण के अंतर्गत लाया जा सकता है, नीतिगत दरों के प्रति अनिवार्य रूप से संवेदनशील (कम- से-कम लक्षित दिशा में) न होने के कारण अगले दो घटकों के लिए विभिन्न स्थितियों में भिन्न, यहां तक कि बहुविध लिखतों की जरूरत पड़ सकती है। वस्तुतः इन लक्ष्यों के संबंध में जो तर्क-वितर्क चल रहा है इनमें से अधिकांश का संबंध इसकी परिभाषा तथा इनको नियंत्रण में रख सकने की क्षमता से है। इसको देखते हुए इस प्रयोजन हेतु मैं इन दो लक्ष्यों के लिए इसकी व्यापक परिभाषा का उपयोग करूँगा।

3. वित्तीय स्थिरताः वित्तीय प्रणाली के ढह जाने के कारण आर्थिक कार्यकलापों में व्यवधान आने के जोखिम को कम करना।

4. बाह्य स्थिरताः अस्थिर पूंजी प्रवाहों से चालू खाते के घाटे के वित्तपोषण के कारण आर्थिक कार्यकलापों में हुए व्यवधान से पैदा हो सकने वाले जोखिम को कम करना।

वस्तुतः सभी केन्द्रीय बैंक इन सभी आयामों के लिए शून्य से इतर भार निर्धारित नहीं करते। काफी हद तक संकट के बाद की मौद्रिक नीति तथा केन्द्रीय बैंकिंग संबंधी बहस के रुख को इसी असमानता ने स्वरूप दिया हैः संकट से प्राप्त सबकों को प्रतिबिंबित करते हुए क्या लक्ष्यों के लिए, विशेष रूप से अंतिम दो लक्ष्यों के लिए भार के निर्धारण की प्रक्रिया की शुरुआत की जानी चाहिए अथवा इसमें बदलाव किया जाना चाहिए?

अब मैं इस ढांचे के घटकों के संबंध में वर्तमान चिंतन के बारे में तीन खंडों में चर्चा करूँगाः मूल्य तथा उत्पादन स्थिरता के बारे में एक साथ तथा उसके बाद वित्तीय स्थिरता तथा बाह्य स्थिरता के बारे में अलग-अलग चर्चा करूंगा।

मूल्य तथा उत्पादन स्थिरता

मेरा तर्क यह है कि संकट के परिणामस्वरूप मूल्य तथा उत्पादन स्थिरता के बुनियादी दृष्टिकोण के संबंध में काफी कम बदलाव हुआ है। केन्द्रीय बैंकों के मौद्रिक नीति संबंधी कार्यों का मूल लक्ष्य अभी भी मूल्य स्थिरता बना हुआ है, जिसमें उत्पादन स्थिरता पर कभी ध्यान दिया जाता है तो कभी नहीं दिया जाता। तथापि इस अवधारणा के बारे में अपेक्षाकृत सुदृढ़ बौद्धिक आधार होने पर भी इससे संबंधित कई मुद्दे उभरकर आए हैं। लगभग एक वर्ष पूर्व तक टेलर नियम फार्मूले के आधार पर समुचित नीतिगत स्थिति की गणना हेतु मुद्रास्फीति की समुचित माप क्या होनी चाहिए, इस विषय पर जॉन टेलर और बेन बर्नान्के के बीच तर्क-वितर्क होता रहा। यह दावा किया गया कि फेड की आसान मुद्रा नीति ने संकट को बढ़ाने में उल्लेखनीय रूप से योगदान दिया, इसके प्रत्युत्तर में बर्नान्के ने तर्क दिया कि फेड का अपेक्षाकृत नरम रुख इस आधार पर सही है कि मुद्रास्फीति संबंधी पूर्वानुमान का रुख इसके उल्लेखनीय रूप से कम होने की ओर था जबकि टेलर ने इस बात का खंडन करते हुए कहा था कि फार्मूले के लिए उपयुक्त निविष्टियां मुद्रास्फीति की वास्तविक दरें हैं न कि उनका पूर्वानुमान। अगर ऐसा होता तो नीतिगत रुख भिन्न होता तथा इसका परिणाम भी कुछ और होता।

तथापि, यह बहस विस्तृत ब्यौरों के संबंध में है, न कि बुनियादी दृष्टिकोण के संबंध में। संकट के बाद बहस का एक दृष्टिकोण यह भी उभरकर आया कि मुद्रास्फीति के लक्ष्य के अनुसरण, अर्थात टेलर नियम में उत्पादन अंतर पर अपेक्षाकृत कम भार लगाये जाने, को महत्त्व नहीं दिया गया है। ऐसा लगता है कि कई अर्थव्यवस्थाओं ने, जिन्होंने इस प्रकार मुद्रास्फीति के लक्ष्य का अनुसरण किया, आसन्न वित्तीय आघात का प्रत्युत्तर देते समय लचीलेपन के लाभ को थोड़ा-बहुत गंवाया जिसके चलते संकट का असर और तीव्र रहा। मुद्रास्फीति का अनुसरण करने के पक्षधरों ने इस दृष्टिकोण का समर्थन अपने मामलों में कई सारी बारीकियों को जोड़कर किया। उदाहरण के तौर पर बैंक ऑफ इंग्लैंड के उप गवर्नर चार्ल्स बीन यह तर्क देते हैं कि संकट को आधार मानकर मुद्रास्फीति के अनुसरण संबंधी पक्ष को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं के संबंध में विश्वसनीय दीर्घावधि स्थिरता की जरूरत है तथा इसे प्राप्त करने के लिए स्पष्ट लक्ष का निर्धारण सबसे सही उपाय है (बीन, 2010)। बल्कि संकट से यह संकेत मिलता है कि लक्ष्यों का कड़ाई से पालन किया जाना एक समस्या बन सकती है तथा मूल्य के स्तर संबंधी अस्थायी आघात का सामना करने के लिए केन्द्रीय बैंकों को विवश होकर कुछ विवेकाधिकार का प्रयोग करने की जरूरत पड़ती है।

स्वेरिजेस रिक्सबैंक के उप गवर्नर लार्स स्वेनसन भी लचीले ढंग से मुद्रास्फीति के लक्ष्य के अनुसरण की वकालत करते हुए कहते हैं कि

'यदि इस प्रकार की मौद्रिक नीति का उपयोग विशेष रूप से किसी समयावधि में मुद्रास्फीति के पूर्वानुमान तथा संसाधन के उपयोग की दृष्टि से प्रासंगिक सभी वित्तीय स्थितियों की जानकारी का उपयोग करके सही प्रकार से किया जाए तो यह वित्तीय संकट से पूर्व, संकट के दौरान तथा उसके बाद भी श्रेष्ठ प्रथा बनी रह सकती है' (स्वेनसन, 2010)।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने स्वयं को सच्चे अर्थों में मुद्रास्फीति का अनुसरण न करने वाले के रूप में परिभाषित किया है। हाल के अपने भाषण में गवर्नर सुब्बाराव ने स्पष्ट प्रकार के लक्ष्य के निर्धारण के प्रति प्रतिबद्ध न रहने के संबंध में दो प्रकार के तर्क दिए हैं (सुब्बाराव, 2010)। इनमें से एक कार्यान्वयन से जुड़ा है जो हाल में लक्ष-निर्धारण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व करने वाले सूचकांक के न होने के बारे में है। दूसरा तर्क अवधारणात्मक है जिसमें अस्थायी तौर पर प्रकट होने वाले आपूर्ति संबंधी आघातों की बारंबारता संबंधी मुद्दा है जिसके प्रति समय अंतराल के कारण मौद्रिक नीति संबंधी उपाय करने की जरूरत नहीं होती, परंतु यदि मुद्रास्फीति को प्रभावी रूप से लक्षित किया जाता है तो मौद्रिक कार्रवाई करने की जरूरत होगी। यह मानते हुए कि संप्रेषण भी मौद्रिक नीति का एक अंग है, मध्यावधि तथा दीर्घावधि मुद्रास्फीति लक्ष्यों में समुचित बदलाव तथा समग्र समष्टि आर्थिक मूल्यांकन तथा नीतिगत कार्रवाइयों के बीच समरूपता लाने के प्रयास के जरिए प्रत्याशाओं का प्रबंधन करने का प्रयास किया जाता है। 1990 के दशक के मध्य से मुद्रास्फीति की औसत दर में जो उल्लेखनीय गिरावट आई है वह ढांचागत सुधारों से संबंधित कई उपायों के संयोजन के साथ मुद्रास्फीति के प्रबंधन हेतु मौद्रिक नीति की प्रभाविता को परिलक्षित करती है।

'मुद्रास्फीति को लक्षित किया जाना चाहिए या नहीं', इस बहस के समाधान के लिए यह उचित स्थान नहीं है। मैं जिस बात पर बल देना चाहता हूं वह मौद्रिक नीति के मूल लक्ष्य संबंधी वह दृष्टिकोण है जिस पर संकट का कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है चाहे वह केवल मुद्रास्फीति हो अथवा वृद्धि तथा मुद्रास्फीति के बीच का संतुलन। सामान्य परिस्थितियों में, अर्थात किसी देशी अथवा बाह्य आघातों के न होने पर संकट के पहले जो मान्यता थी वह बाद में भी बनी रहती है। इस प्रकार के आघात की स्थिति में बदलाव की कुछ गुंजाइश रहनी चाहिए ताकि विभिन्न प्रकार के आघातों से निपटने के लिए पर्याप्त अधिकार तथा लिखतों के रूप में लचीलापन उपलब्ध हो सके।

वित्तीय स्थिरता

पीछे मुड़कर देखने पर वित्तीय स्थिरता हमेशा से ऐसे लचीलेपन का हिस्सा रही है जिसकी सहायता से कई देशों के केंद्रीय बैंकों ने वित्तीय प्रणाली में हो सकनेवाली भारी क्षति से बचने के लिए अपने अधिकारों का उपयोग किया है। जहां इसका उपयोग कभी-कभी कमजोर संस्थाओं के विलयन और अधिग्रहण को सुकर बनाने हेतु नरमी से किया गया, वहीं अन्य स्थितियों में 'अंतिम उधारदाता' की भूमिका की शक्ति का उपयोग किया गया। वस्तुतः मेरा यह तर्क है कि केंद्रीय बैंक की यह भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यही वित्तीय प्रणाली को चलनिधि संबंधी बाधाओं से प्रभावित होने से बचाती है। परंतु इन पारंपरिक कार्यों के आगे भी कई मुद्दे उभरकर आते हैं जो लक्ष्यों तथा लिखतों से जुड़े हैं।

केंद्रीय बैंक के अधिदेश के साथ वित्तीय स्थिरता को स्पष्ट रूप से जोड़ने का एक दृष्टिकोण यह हो सकता है कि मानक टेलर नियम में एक अतिरिक्त चर का समावेश किया जाए (उदाहरणार्थः विलियम पोप, 2010)। इससे नीतिगत दरों को एक ऐसे स्तर पर निर्धारित करने में मदद मिलेगी जो वित्तीय स्थिरता के लिए उचित हो, चाहे वित्तीय स्थिरता के किसी भी संकेतक को क्यों न लिया जाए - अर्थात् जमीनी हालातों के आधार पर किसी बेंचमार्क मूल्यन से आस्तियों के मूल्यों का विचलन। दूसरे शब्दों में, नीतिगत कार्रवाई पण्य की कीमतों की स्फीति और आस्ति-मूल्य स्फीति दोनों से प्रभावित होती है। इस संबंध में दुविधा यह है कि आस्ति-मूल्य स्फीति संबंधी नीतिगत कार्रवाई के कारण वास्तविक गतिविधियों में संभवतः व्यवधान आएगा, अर्थात कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जो आर्थिक स्थितियों को देखते हुए उचित न हो। वित्तीय स्थिरता की माप करने के लिए एक सही बेंचमार्क - अर्थात् स्थावर संपदा, इक्विटी अथवा जटिल प्रकार के पोर्टफोलियो - का पता लगाने का कार्य भी चुनौतीपूर्ण हो सकता है। यहां इस तथ्य का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि अस्थिरता के प्रमुख स्रोत वित्तीय मध्यस्थों के तुलनपत्र होते हैं जिनकी जानकारी न होने की वजह से बाजार मूल्यों पर उनका प्रभाव परिलक्षित नहीं हो पाता है।

वित्तीय स्थिरता के संबंध में विचार करते समय केंद्रीय बैंक द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला एक कम स्पष्टता वाला दृष्टिकोण 'हवा के रुख के विपरीत स्थिति' का है जो परिस्थितिजन्य उस समय की गई ऐसी कार्रवाई होती है जब ऐसा लगे कि आस्तियों के मूल्यों में अवहनीय वृद्धि हुई है। की जाने वाली कार्रवाई को सही साबित करने के लिए इस बात पर विचार करना होता है कि आस्तियों के मूल्यों में वृद्धि अस्थायी स्वरूप की तो नहीं है। ईसीबी के कार्यकारी बोर्ड के एक सदस्य ज्योर्गेन स्टार्क अस्थायी स्वरूप की मूल्यवृद्धि की पहचान करने से जुड़ी असुविधाओं तथा इसके परिणामस्वरूप हवा के रुख के विपरीत वाली स्थिति अपनाने की रणनीति से जुड़ी जोखिमों को स्वीकार करते हैं (स्टार्क, 2010)। वे तर्क देते हैं कि अस्थायी मूल्यवृद्धि समाप्त होने की स्थिति पहले की सोच के विपरीत अर्थव्यवस्था के लिए अधिक खर्चीली हो सकती है। प्रभाविता की दृष्टि से वे उस अनुसंधान का उल्लेख करते हैं जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि आस्ति मूल्यों में

परिवर्तन संबंधी मौद्रिक नीतिगत उपाय सुदृढ़ संकेत प्रभाव वाले होते हैं जो वस्तुतः वित्तीय मध्यस्थों की जोखिम संबंधी अवधारणा तथा व्यवहार को प्रभावित करते हैं। संक्षेप में वे इस बात को मानते हैं कि वित्तीय स्थिरता की लक्ष्य संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए पारंपरिक मौद्रिक नीतिगत लिखत सही हैं।

इसके विपरीत, बैंक ऑफ इंग्लैंड की मौद्रिक नीति समिति के बाह्य सदस्य एडम पोसेन तर्क देते हैं कि अस्थायी मूल्यवृद्धि की पहचान करने, संकट के उपरांत समाधान की लागत तथा मौद्रिक लिखतों की प्रभाविता की दृष्टि से हवा के रुख के विपरीत वाली स्थिति कार्यक्षम नहीं होगी (पोसेन, 2010)। वे मानते हैं कि अंदरूनी प्रणाली के बारे में हम अभी भी काफी कम जानकारी रखते हैं, और इसलिए गलत कदम उठाए जाने की संभावनाएं काफी अधिक हैं जिसका वास्तविक अर्थव्यवस्था पर अवश्य ही प्रतिकूल असर पड़ेगा। मोटे तौर पर यह मुद्दा अभी भी सुलझा हुआ नहीं लगता जिसके कारण इसे स्पष्ट नीतिगत निहितार्थों के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

तथापि वित्तीय स्थिरता के संबंध में केन्द्रीय बैंक की भूमिका संबंधी चिंतनों के बारे में कुछ उल्लेखनीय कार्य हुआ है। यह विचार मौद्रिक नीति के क्षेत्र से नहीं आया है बल्कि विवेकपूर्ण विनियमन के दृष्टिकोण से आया है। संकट से पूर्व की अवधि में विवेकपूर्ण विनियमन को मुख्य रूप से संस्था विशिष्ट गतिविधियों के रूप में देखा जाता था। ऐसी विचारधारा थी कि यदि प्रत्येक संस्था के तुलन-पत्र संबंधी जोखिमों की पहचान करके उनका समाधान कर लिया जाता है तो समग्र प्रणाली सुरक्षित रहेगी। संकट ने इस धारणा को स्पष्ट रूप से गलत साबित कर दिया है; प्रणाली में 'समग्र जोड़' संबंधी जोखिम है जो यह कहता है कि पर्यवेक्षित तथा अपर्यवेक्षित संस्थाओं के बीच कई तरह के तथा जटिल प्रकार के आपसी संबंधों के कारण समग्र जोखिम अलग-अलग हिस्सों के जोखिमों के जोड़ से अधिक होते हैं। संकट के बाद के विनियामक ढांचे में समष्टि विवेकपूर्ण अथवा प्रणालीगत जोखिम न्यूनीकरण की धारणा ने काफी महत्त्व प्राप्त कर लिया है। जहां राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय विनियामक एजेंसियां इस प्रक्रिया के संकेतकों तथा न्यूनीकरण संबंधी दोनों उपायों के संबंध में अवधारणा के कार्यान्वयन के संबंध में कार्रवाई करती रही हैं वहीं केन्द्रीय बैंक की भूमिका के बारे में एक स्थूल स्वरूप उभरकर आया है।

पहला, विवेकपूर्ण विनियामक के पास ऐसी सूचना का भंडार होता है जिसके आधार पर प्रणालीगत जोखिम का अनुमान लगाया जा सकता है और यह जानकारी केन्द्रीय बैंक में अथवा बाहरी संस्था के पास हो सकती है। व्यष्टि विवेकपूर्ण आंकड़ों का लाभ उठाने तथा प्रणालीगत जोखिम के निर्धारण के लिए पर्यवेक्षी प्रक्रिया से उभरकर आने वाला आकलन का क्षेत्र ऐसा है जहां नये संसाधन तथा कौशल को जोड़ने की जरूरत है तथा इनको जोड़ने की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि ये पारंपरिक पर्यवेक्षी व्यवस्था के साथ प्रभावी रूप से कार्य कर सकें। तथापि यह तय हो जाने के बाद कि कार्रवाई की जानी है, केंन्दीय बैंक तथा सरकार दोनों आगे आ सकते हैं। यदि समस्या का कारण चलनिधि हो तो अंतिम बचावकर्ता की भूमिका निभाई जा सकती है। यदि समस्या दिवालियेपन की हो तो सरकार को यह तय करना होता है कि संस्था को असफल हो जाने दिया जाए या सशर्त बचाव की व्यवस्था की जाए जिसके लिए संभवतः काफी मात्रा में पूंजी डालने की जरूरत पड़ेगी। विवेकपूर्ण विनियमन के अंतर्गत आने वाले तथा इससे भिन्न संस्थाओं के बीच अंतर-संबंधों को देखते हुए अविनियमित संस्थाओं पर निगरानी रखने वाली विनियामक एजेंसियां भी सामूहिक तथा समन्वित प्रणालीगत जोखिम निगरानी तथा न्यूनीकरण ढांचे का हिस्सा हो सकती हैं।

यही वह दिशा है जिस ओर भारत सहित कई देश अग्रसर हो रहे हैं। इस नई व्यवस्था को उभरकर आने में अवश्य ही कुछ समय लगेगा क्योंकि ये व्यवस्थाएं वस्तुतः पूर्वोपायी प्रकृति की हैं तथा परीक्षा में इनको तभी सफल माना जाएगा जब उसी प्रकार के कारणों से वित्तीय संकट की पुनरावृत्ति न हो जिनसे पिछले संकट की शुरुआत हुई थी। तथापि निहित धारणा यह है कि वित्तीय स्थिरता संबंधी समस्या से निपटने का सबसे अच्छा मार्ग मौद्रिक के बजाए विवेकपूर्ण उपायों का है तथा यह स्थिरता संकेतक संबंधी कुछ दुविधाओं तथा ऊपर उल्लिखित मौद्रिक लिखतों की प्रभाविता संबंधी समस्याओं का समाधान करता है।

वित्तीय स्थिरता के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण का आधार यही रहा है, हालांकि इसके बारे में स्पष्ट रूप से कहा नहीं गया है। सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) ने बैंकिंग प्रणाली को कर्ज जोखिम मुक्त बफर उपलब्ध कराया। यह एक ऐसा उपकरण है जिसके बारे में वैश्विक स्तर पर पुनः यह विचार हो रहा है कि बैंकों द्वारा पूर्णतः चल आस्ति के रूप में रखे जाने के लिए वर्धित मानदंड के रूप में इसका प्रयोग किया जाए। पहले 2005-06 के दौरान स्थावर संपदा बाजार में अत्यधिक तेजी के लक्षणों से निपटने के लिए तथा अभी हाल में नवंबर 2010 की तिमाही समीक्षा के दौरान मूल्य की तुलना में ऋण अनुपात की सीमा तय करने तथा उच्चतर जोखिम भार तथा प्रावधान संबंधी आवश्यकताओं के रूप में विवेकपूर्ण उपाय किए गए ताकि आस्तियों के उचित मूल्य क्या होने चाहिए उस पर स्पष्ट मत व्यक्त किए बिना मूल्यों में संभावित गिरावट की स्थिति में वित्तीय प्रणाली को राहत पहुंचायी जा सके।

बाह्य स्थिरता

बाह्य प्रबंधन के संबंध में केन्द्रीय बैंक की भूमिका के बारे में अल्पावधि तथा दीर्घावधि से जुड़े मुद्दे हैं। क्या विनिमय दर दीर्घावधि

वृद्धि के लिए नीतिगत उपकरण होना चाहिए? क्या इस संबंध में उपलब्ध विकल्प तथा समंजन बड़ी तथा छोटी अर्थव्यवस्थाओं के लिए भिन्न-भिन्न हैं? ये कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जो वर्तमान वैश्विक आर्थिक बहस से जुड़े हैं। तथापि संकट के तत्काल बाद उभरती अर्थव्यवस्थाओं में भारी मात्रा में पूंजी के प्रवाह की संभावना से जुड़ी अल्पावधि चिंता उत्पन्न हुई है। इससे उन्नत तथा उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बहाली की सुदृढ़ता एक समान न रहने की बात तथा उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन उपायों को जारी रखने का प्रयास प्रदर्शित होता है। उभरती अर्थव्यवस्थाएं बाहर से पूंजी के भारी आगम से स्पष्टतः चिंतित हैं क्योंकि विनिमय दर के मजबूत होने के कारण अथवा अत्यधिक चलनिधि के चलते देशी अर्थव्यवस्था अस्थिर हो जाएगी, जबकि ये इस समय स्थिति को आम तौर पर नियंत्रण में रखना चाहती हैं।

इस प्रकार की स्थिति से निपटने के लिए केन्द्रीय बैंकों को क्या करना चाहिए? इसे अत्यंत अल्पावधि की स्थिति के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि यदि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में प्रोत्साहन योजनाओं का असर सही रूप में होता है तो प्रवाह में पुनः संतुलन होगा क्योंकि ये अर्थव्यवस्थाएं अधिक सुदृढ़ता के साथ बेहतर स्थिति की बहाली की दिशा में आगे बढ़ेंगी। इस संदर्भ में, जॉनाथन ओस्ट्रे तथा अन्य द्वारा संयुक्त रूप से लिखित आइएमएफ स्टाफ पोजीशन नोट के निष्कर्ष प्रासंगिक हैं '...यदि अर्थव्यवस्था लगभग पूरी क्षमता पर कार्य करती है, यदि विदेशी मुद्रा भंडार का स्तर पर्याप्त रहता है, यदि विनिमय दर का अवमूल्यन नहीं किया जाता है तथा यदि ये प्रवाह अल्पावधि वाले प्रवाह बने रहते हैं तो विवेकपूर्ण तथा समष्टि आर्थिक नीति के अतिरिक्त आगम के प्रबंधन हेतु नीतिगत उपकरणों के रूप में पूंजीगत नियंत्रण युक्तिसंगत है' (ऑस्ट्रे तथा अन्य, 2010)।

नियंत्रणों को कई शर्तों के अधीन ही सही ठहराया जा सकता है, फिर भी यह स्पष्ट है कि जो देश इन शर्तों को पूरा नहीं करते, वे भी अस्थिर पूंजी प्रवाह तथा विनिमय दरों के भय के कारण स्वयं की रक्षा हेतु तथा देशी चलनिधि की स्थितियों के संदर्भ में इन नियंत्रणों को लागू करने का प्रयास करेंगे। वस्तुतः आइएमएफ नोट में उन प्रायोगिक परिणामों के बारे में भी बताया गया है जो यह दर्शाता है कि जिन देशों ने बाह्य देयताओं की कम जोखिम प्रोफाइल को लक्ष्य करके नियंत्रणों को लागू किया वे संकट के दौरान अधिक सुदृढ़ रहे।

अतः क्या यह पूंजी के नियंत्रण के पक्ष में तर्क है जो संकट-पूर्व की विचारधारा के विपरीत है? संकट के दौरान की स्थिति तथा देशों के जो विभिन्न समूह संकट से जिस प्रकार उबरकर आए उसे देखते हुए यह बात काफी हद तक सही लगती है। तथापि उन देशीय तथा वैश्विक (दोनों प्रकार की) विशिष्ट स्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए जिनसे किसी देश विशेष की पूंजी-नियंत्रण की जरूरत का निर्धारण किया जा सके।

विनिमय दर का प्रबंधन करने के लिए हस्तक्षेप करना एक और उपाय है जिसके जरिए केंद्रीय बैंक बाह्य स्थिरता में योगदान देता है। अल्पावधि के परिप्रेक्ष्य में, निर्यात तथा आयात-प्रतिस्पर्धी देशी वस्तुओं के कारण हो सकने वाली असंतुलनकारी स्थितियों से बचने के लिए हस्तक्षेप करने के निर्णय को समग्र देशीय स्थितियों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। बैंक ऑफ जापान के गवर्नर मासाकी शिराकावा द्वारा किए गए आकलन से इस दुविधा का विश्लेषण किया जा सकता है। उनका तर्क है कि ऐसी स्थिति में जब नीतिगत दरें पहले ही शून्य की रेखा के करीब हों, विनिमय दर में मजबूती लाये जाने से मुद्रास्फीति के दबाव को कम करने में मदद मिलती है और यह कम ब्याज दर के परिदृश्य को बनाए रखती है जिसके चलते आस्तियों की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि होने लगती है (शिराकावा, 2010)। दूसरे शब्दों में, शून्य ब्याज दर की स्थिति में देश विशेष के लिए अपने उत्पादों की बाह्य मांग को बनाए रखना ही नहीं बल्कि उसे बढ़ाना भी जरूरी होता है, ताकि इसके जरिए अपनी देशीय नीति को सामान्य स्थिति में लाने की गुंजाइश बनाये रखी जा सके।

यदि इस युक्ति को उस देश में लागू किया जाना हो जहां देशी मांग में वृद्धि की वजह से मुद्रास्फीतिजन्य दबाव बन रहा हो तो मुद्रा में मजबूती आने से निर्यात तथा आयात-प्रतिस्पर्धी क्षेत्रों की मांग में संकुचन के कारण संभवतः इन दबावों को कम करने में मदद मिलेगी। जहां समावेशी वृद्धि की दृष्टि से विशेष रूप से निर्यात में दीर्घावधि वृद्धि महत्त्वपूर्ण है, वहीं तुलनात्मक रूप से उनके श्रम-प्रधान होने को देखते हुए ऊपर दिए गए तर्क विभिन्न समष्टि आर्थिक स्थितियों में नीतिगत उपकरण के रूप में उपयोग करते समय किए जाने वाले कुछ समंजन की ओर इंगित करते हैं।

रिज़र्व बैंक की विनिमय दर संबंधी नीति को मोटे तौर पर गैर-हस्तक्षेपकारी नीति बताया गया है। हस्तक्षेप केवल तभी किया जाता है जब प्रवाह अत्यधिक उतार-चढ़ाव वाला, भारी मात्रा में तथा विघटनकारी हो। यह दृष्टिकोण 'लचीलेपन' अथवा 'नियंत्रित विवेकाधिकार' की धारणा के अनुरूप है जिसे मौद्रिक नीति के संबंध में पारंपरिक दृष्टिकोण के लिए अपवादात्मक स्थितियों के संदर्भ में पहले उपयोग किया जाता रहा है। ये वस्तुतः अपवादात्मक स्थितियां ही होती हैं जब असामान्य परिस्थितियों के आ जाने पर सामान्य नियमों से हटकर कार्रवाई करने की जरूरत पड़ती है। असामान्य स्थितियां क्या हैं इसको स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता, परंतु संभवतः इन्हें उन परिस्थितियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनके अंतर्गत कार्रवाई की जाती है।

समापन टिप्पणी

इस लेख में मैंने उन विकल्पों, दुविधाओं तथा बाधाओं के बारे में जानकारी देने की कोशिश की है जिनका सामना केन्द्रीय बैंकरों को अर्थव्यवस्थाओं को संकट से उबारने के लिए प्रयास करते समय करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में जहां मौद्रिक नीति तथा केन्द्रीय बैंकिंग कार्यकलाप संबंधी कतिपय पारंपरिक स्थितियों को बल मिला है वहीं अधिदेशों तथा लिखतों के संबंध में कुछ नयी विचारधाराएं उभरकर आयी हैं। स्पष्टतः ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनके लिए विश्लेषणात्मक आधारों को सुदृढ़ किए जाने अथवा इन्हें नये सिरे से तैयार किए जाने की जरूरत है ताकि विभिन्न परिस्थितियों में नीतिगत विकल्पों के बारे में आंतरिक रूप से व्यवस्थित रुख अपनाया जा सके। इन बौद्धिक गतिविधियों में जो विकास होगा उसका लाभ अंततः केन्द्रीय बैंकरों को ही मिलेगा। परंतु इस प्रक्रिया के पूरी तरह से स्पष्ट होने में समय लगने पर भी उपयोगकर्ताओं के चिंतनों और विचारों से जो संदेश मिलता है उनका लाभ उठाने की जरूरत है। अब मैं इसका समापन उन तीन संदेशों के साथ करना चाहूंगा जो मेरे विचार में महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला, संकट के कारण मौद्रिक नीति संबंधी मूल लक्ष्यों तथा दृष्टिकोणों अर्थात पण्य की कीमतों तथा उत्पादन स्थिरता से निपटने के लिए पारंपरिक ब्याज दर तथा चलनिधि व्यवस्थापन संबंधी लिखतों के उपयोग का महत्त्व किसी भी रूप में कम नहीं हुआ है चाहे इन दो लक्ष्यों को जितना भी महत्त्व दिया जाए । संकट ने आघात जैसी स्थितियों में निर्धारित रास्ते से हटकर कार्रवाई करने की छूट पर बल दिया है। इसका स्पष्ट आशय यह है कि सामान्य स्थितियों में एक मानक दृष्टिकोण को अपनाया जाए, परंतु जब स्थितियां असामान्य हों तो निर्धारित पथ से हटकर कार्रवाई करना उचित है; हां, किसी को यह तय करना होगा कि इसकी शुरुआत कब हो। इस निर्णय को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए 'असामान्यता' को परिभाषित करना और इसे मात्रात्मक रूप देना वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषणात्मक आवश्यकता है।

दूसरा, यद्यपि कार्रवाइयां सामान्यता की सीमा-रेखा के आस-पास अथवा उसके परे भी की जाती हैं, तथापि ऐसा शायद ही होगा कि की गयी कार्रवाइयां पारंपरिक लिखतों अथवा उस अर्थ में पारंपरिक ढांचों के दायरे में ही रहें। जहां तक वित्तीय स्थिरता का संबंध है, चाहे पारंपरिक मौद्रिक लिखतों के उपयोग का समर्थन करने वाले विश्लेषण में प्रगति हो रही हो, फिर भी इस विचारधारा के विरोध में भी उतना ही सुदृढ़ तर्क है। जिस बात को अब स्वीकार किया जा रहा है वह यह है कि इन लिखतों का योगदान होने पर भी समस्या के प्रभावी समाधान के लिए विवेकपूर्ण उपाय संभवतः अधिक कारगर साबित होंगे। इसके अलावा, अंतर-संबद्धता के चलते संकट के बाद प्रणालीगत जोखिम का महत्त्व बढ़ जाने के कारण विभिन्न एजेंसियों के लिए स्पष्ट रूप से परिभाषित भूमिकाओं के साथ जोखिम प्रबंधन के क्षेत्र में आपसी समन्वय करने की जरूरत बढ़ गयी है।

तीसरा, जहां सामान्य तौर पर बाह्य स्थिरता संबंधी मुद्दों का समाधान करना केन्द्रीय बैंकों के विस्तारित अधिदेश का एक स्वीकार्य अंग बनता जा रहा है वहीं इसकी प्रकृति और की जाने वाली कार्रवाई देशी अर्थव्यवस्था की स्थिति तथा वैश्विक हालात दोनों पर बहुत ज्यादा निर्भर करेगी। इसके अलावा, अल्पावधि लक्ष्य दीर्घावधि लक्ष्यों के प्रतिकूल हो सकते हैं जिनके लिए कतिपय प्राथमिकताओं को तय करना जरूरी हो सकता है।

मैं अपनी बात बेन बर्नान्के के हाल के भाषण के शब्दों से समाप्त करना चाहूंगा : '... पिछले दो वर्षों की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिखाया कि नये दृष्टिकोण के प्रति नीतिगत लचीलेपन और खुलेपन का कितना महत्त्व है। संकट के दौरान केन्द्रीय बैंक कल्पनाशील और नवोन्मेषी रहे, उन्होंने ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जिन्होंने वित्तीय संकट को कम करने तथा आर्थिक कार्यकलापों को समर्थन देने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। चूंकि वैश्विक वित्तीय प्रणाली तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं और जटिल होने के साथ-साथ परस्पर निर्भरशील भी हुई हैं, अतः नई नीतिगत चुनौतियों से निपटने के लिए नवोन्मेषी नीतिगत कार्रवाइयों की जरूरत पड़ती रहेगी' (बर्नान्के, 2010)।

ये नवोन्मेषी कार्रवाइयां तीन मोर्चों पर की जानी चाहिए। पहला, केन्द्रीय बैंक के व्यापक अधिदेश का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए, साथ ही इसके मूल अधिदेशों की प्राथमिकताओं के अनुरूप होने की भी जरूरत है। इसके लिए अंततः उन स्थितियों को परिभाषित करने और उन शर्तों को मात्रात्मक स्वरूप देने की जरूरत पड़ेगी कि किन हालात में व्यापक अधिदेश तत्काल लागू हो जाएगा। दूसरा, यदि पहले से समुचित लिखत हों तो उनको नया रूप देने अथवा उन्हें नये सिरे से विकसित करने की जरूरत है ताकि व्यापक अधिदेश की अपेक्षा को पूरा किया जा सके। यह आशा नहीं की जा सकती कि किसी एक अथवा कुछ पारंपरिक मौद्रिक उपकरणों से यह कार्य पूरा होगा। अंत में, इन व्यापक अधिदेशों का अनुसरण सामूहिक संस्थागत ढांचे के अंतर्गत अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। परंतु इस संबंध में समन्वय संबंधी चुनौतियां उपस्थित होंगी जिनका समाधान करना जरूरी है।

मुझे यहां आमंत्रित करने के लिए आयोजकों को मैं पुनः धन्यवाद देता हूँ। मेरी बात सुनने के लिए आप सभी को धन्यवाद।

संदर्भ

बीन, चार्ल्स, माथाईस पौसटियान, एड्रियन पेनालवर और टिम टेलर (2010), 'मानीटरी पॉलिसी आफ्टर दि फॉल': फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ कैनसस सिटी के वार्षिक सम्मेलन, जैक्सन होल, वोमिंग में प्रस्तुत किया गया पेपर।

बर्नान्के, बेन एस. (2010), 'इमर्जिंग फ्रॉम दि क्राइसिसः ह्वेर डू वी स्टैंड? ', फ्रैंकफर्ट में छठे ईसीबी केंद्रीय बैंकिंग सम्मेलन में की गई टिप्पणी।

ओस्ट्रे, जोनाथन डी, अतीश घोष, कार्ल हेबरमेयर, मार्कोस चेमोन, माहवश कुरैशी, तथा डेनिस रिनहार्त (2010), 'कैपिटल फ्लोजः दि रोल ऑफ कंट्रोल्स', आइएमएफ स्टाफ पोजीशन नोट, फरवरी।

पोले, विलियम (2010), 'मॉनिटरी पॉलिसी फ्लैक्जिबिलिटीः सॉल्यूशन ऑर प्राब्लम? ' भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आयोजित प्रथम अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान सम्मेलन में की गई प्रस्तुति।

पोसेन, एडम एस(2010), 'डू वी नो ह्वाट वी नीड टू नो इन आर्डर टू लीन अगेन्ट दि विंड? ', काटो इन्स्टिट्यूट में की गई प्रस्तुति, 'इज मॉनिटरी पॉलिसी रेस्पान्सिबल फॉर बबल्स?' विषय पर वार्षिक मौद्रिक सम्मेलन पैनल।

शिराकावा, मासाकी (2010), 'एडवान्स्ड एंड इमर्जिंग इकॉनॉमिजः टू-स्पीड रिकवरी', बौहिनिया डिस्टिंगुइस्ट टाक, बौहिनिया फाउंडेशन रिसर्च सेंटर, हांगकांग, एसएआर।

स्टार्क, जुएरजेन (2010), 'अप्रोचेस टू मॉनिटरी पॉलिसी रिविजिटेड - लेसंस फ्रॉम दि क्राइसिस', छठे ईसीबी केंद्रीय बैंकिंग सम्मेलन, फ्रैंकफर्ट में विषय प्रवर्तन भाषण।

सुब्बाराव, डी. (2010), 'वित्तीय संकट - कुछ पुराने प्रश्न और शायद कुछ नए उत्तर', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, सितंबर, पृ.1713-1722।

स्वेनसॉन, लार्स ई. ओ. (2010), 'मॉनिटरी पॉलिसी अफ्टर दि फिनांशियल क्राइसिस', बीआइएस समीक्षा 118, पृ.1-6।